

रजा

1922 में जन्मे

थे मध्यप्रदेश के

बावरिया के वनक्षेत्र में।

पिता महकमा जंगलात में

वार्डन थे इसलिए बावरिया, बर्चई, मंडला, कान्हा-किसली के जंगलों का रहस्यभरा सन्नाटा उनके कानों में गूँजता रहा।

जिसकी गूँज आज भी बनी हुई है। सतपुड़ा और विंध्याचल की पर्वत श्रेणियों के बीच की हरीतिमा और कहीं दूर उद्गम से आता नर्मदा का शोर उनकी साँसों में बसा हुआ है जिसकी प्रतिध्वनि हजारों मील दूर पेरिस में आज भी सुनाई देती है उन्हें।

पहली बार रजा साहब से मिला था। इन छब्बीस सालों में यद्यपि उम्र ने उनके शरीर पर अपने निशान डाले हैं, कुछेक बीमारियों ने भी 84 वर्षीय देह में

झेरा डालकर उसे कृश बनाने की कोशिश की है पर उनका मन अब भी उतना ही युवा, सक्रिय और ऊर्जावान लगा जितना कि वह तब था जब 80 के दशक में पहली बार उनसे मिला था।

हम लोग उनकी प्रिय जगह ताज इंटरकॉन्टिनेंटल के एक रेस्त्राँ में बैठे थे और उन बीते सालों की यादों को ताज़ा कर रहे थे। अब तो उन पर डॉक्टरों ने बहुत सारे परहेज थोप दिए हैं पर कुछ साल पहले इसी जगह उन्होंने भेल-पूरी और चाट की फ़रमाइश की थी। वे थोड़े समय के लिए भारत आते हैं और उस संक्षिप्त समय में भी उनके अनेक कार्यक्रम होते हैं। मुंबई में ही नहीं, प्रायः देश का आधा भाग वे हर बार तय करते हैं, इसलिए चौपाटी पर या बाहर कहीं भेल-पूरी खाना उनके लिए मुमकिन न था। ताज़ या उसी तरह के बड़े रेस्त्राँ में खाना भी इसीलिए ज़रूरी था। स्टेटस सिंबल जैसा कुछ नहीं, यहाँ थोड़े समय में अनेक व्यस्तताओं को निभाने की मजबूरी थी। 'क्योंकि बीमार होना मैं अपॉईंट नहीं

पेरिस में बसे सुप्रसिद्ध चित्रकार सैयद हैदर रजा

मनमोहन सरल की मुक्ति मार्ग के लिए विशेष बातचीत

कर सकता।' कहा था रजा ने।

आज वे सिर्फ़ बिसलेरी पी रहे थे जिसके घूँट वे बातों के बीच लेते रहे। हमेशा बहुत अच्छी और सारगर्भित बातें करते हैं रजा और जब भी वे पुराने समय की चर्चा करते हैं, कुछ ज्यादा ही भावुक हो जाते हैं, खासकर, अपने बचपन और जन्म स्थान की बातों पर। जैसा कि फ़्रांसीसी समीक्षक बॉदेलमर जॉर्ज ने लिखा है, "रजा किसी भारतीय मिनिअचर चित्र के राजकुमार से छरहरे और मर्द, लंबे और गठे हुए दिखाई देते हैं। सुते चेहरे वाली उनकी मुखाकृति पर उनकी सुलेमानी आँखें उसे रोशनी से भर देती हैं। यह तेजस्वी मुखौटा भव्य है क्योंकि वह विचार जिसे वह पोसता है, महान है।"

अब भी सब कुछ वैसा ही है, खासकर वे सुलेमानी आँखें रोशनी से भरी हुईं। रजा 1922 में जन्मे थे मध्यप्रदेश के बावरिया के वनक्षेत्र में। पिता महकमा जंगलात में वार्डन थे इसलिए बावरिया, बर्चई, मंडला, कान्हा-किसली के जंगलों का रहस्यभरा सन्नाटा उनके कानों में गूँजता रहा। जिसकी गूँज आज भी बनी हुई है। सतपुड़ा और विंध्याचल की पर्वत श्रेणियों के बीच की हरीतिमा और कहीं दूर उद्गम से आता नर्मदा का शोर उनकी साँसों में बसा हुआ है जिसकी प्रतिध्वनि हजारों मील दूर पेरिस में 55-56 साल बाद भी सुनाई देती है उन्हें।

हाँ, 55-56 साल हो गए रजा को भारत छोड़े हुए। किसी आम भारतीय की एक औसत और पूरी जिन्दगी। अक्टूबर 1950 को वे पानी के जहाज़ से रवाना हुए थे और पीछे छूट गया था अपना वतन, मुंबई जहाँ उन्होंने हुसैन आरा, सुज़ा, गादे और बाकरे के साथ मिलकर नौजवान और प्रयोगशील चित्रकारों का गुप बनाया था- 'प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप' बावरिया का वनप्रान्तर, नर्मदा, विंध्याचल और तमाम साथी जिन्होंने उनमें वह शक्ति और प्रेरणा भर दी थी कि वे देश से बाहर जा सकें।

रजा ने पहले नागपुर के कला विद्यालय में, फिर मुंबई के

जे.जे. में शिक्षा पाई। 1947 से 50 तक भारत में प्रदर्शनियाँ कीं और भारत सरकार तथा फ़्रांस की छात्रवृत्तियाँ मिलीं। पहली ने अवसर दिया भारत के कई ग्रामीण अंचलों को निकट से पहचानने का जबकि दूसरी ने उन्हें पेरिस भेज दिया चित्रकला और रचनात्मकता के नए क्षितिज तलाशने के लिए।

वहाँ के 'इकोल नेशनाल द बो जार' की अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद तमाम अभावों और मुश्किलों के बावजूद उन्होंने पेरिस

और दुरूह बना रहा था। वह हिन्दी पढ़ाकर थोड़ा-बहुत पैसा पा रहा था और एक प्रकाशक मित्र ने उसे ग्रीटिंग कार्ड्स बनाने और किताबों को सजाने का काम दे रखा था। यह एक दुरूह जीवन था और जाड़ा अपनी यंत्रणा लिए था और उसकी एकमात्र सुरक्षा एक पुराना ओवरकोट था।

पर 1957 के बाद रजा को राहत मिलने लगी थी। पहचान मिली थी और चित्रों की कीमतें भी बढ़ी थीं। एक गैलरी से उनका

में तब फ़्रांस की सरकार के अतिथि के रूप में पेरिस गया था और रजा पहले दिन से ही मेरे साथ थे, अपनी तमाम व्यस्तताओं को दरकिनार कर।

मैं पेरिस रात में पहुँचा था। पहुँचने पर फ़ोन किया तो बोले कि मैं अभी आ रहा हूँ। मैंने मना भी किया कि रात हो रही है। कल मिल लेंगे। पर बोले, "नहीं, तुम अकेले हो और तुम्हें फ़्रेंच भी नहीं आती। मुझे तुरंत आना ही चाहिए।" और थोड़ी देर बाद वे अपनी पत्नी जानीन के साथ उपस्थित थे।

बिना अधिक समय खोए उन्होंने देश के, भारत के मित्रों के और यहाँ के कला जगत् के बारे पूछना शुरू कर दिया। वे भारत के बारे में जानने के लिए इस क़दर

कला-कर्म में दिव्य शक्तियों का सहयोग अनिवार्य है



सैयद हैदर रजा से बातचीत करते हुए मनमोहन सरल

में ही रुक जाना तय किया और 1956 में उसी 'इकोल' (स्कूल) की एक चित्रकार छात्रा जानीन मोंजीला से विवाह कर लिया। यद्यपि उसी साल उन्हें पेरिस का सम्मानित पुरस्कार 'प्रि द ला क्रोतीक' मिल चुका था और उनके काम को पहचान भी मिलने लगी थी किंतु आर्थिक अभाव फिर भी उन दिनों रहा। उनके समकालीन चित्रकार मित्र कृष्ण खन्ना के अनुसार, 'वहाँ रुकने और काम करने का उसका कठोर निश्चय जीवन-यापन को बेहद मुश्किल

अनुबंध हो गया था। जब वे 1959 में पहली बार भारत आए और अपने साथ कुछ छोटे चित्र लाए थे। उनकी क्रीमों से सुनकर साथी भारतीय चित्रकार आर्ताकत हुए और रजा के साथ लगी सामूहिक प्रदर्शनी में उन सबने भी अपनी क्रीमों बढ़ा दीं।

1975 से वे लगातार भारत आ रहे हैं। अक्सर तो हर साल। 'अपने देश से जीवनग्राही संबंध रख सकना, इतनी दूर, इतने सालों बाद भी, मेरे लिए एक सुखद अनुभूति है, प्लातो बोबूर में संग धूमते हुए पेरिस में रजा ने कहा था।

उत्तेजना में थे कि मुझे लगा कि यह आदमी इतने सालों से अपने देश से इतनी दूर रह कैसे रहा है। यह तो कहीं से भी पेरिसवासी लगता ही नहीं। जैसे इसने तो कभी भारत छोड़ा ही नहीं, फ़्रांस में रहते हुए भी यह तो भारत का ही है। मुझे याद आता है कि एक बार उन्होंने कहा था, "एक भारतीय को मिटाना असंभव है।"

पेरिस और भारत, भारत और पेरिस। पश्चिम और पूर्व, पूर्व और पश्चिम। रजा की आँखों में ये दो भौगोलिक भूखंड नहीं हैं, एक ही मनुष्य के दो चेहरे हैं। उन्हें ऊर्जा और प्राणदायिनी शक्ति भारत से, अपने वतन से मिली है और कहने की, रचने की, अभिव्यक्ति की शैली और उसे समझने की क्षमता पश्चिम से मिली है। वे पेरिस में रहकर भी भारत में बने रहते हैं। जहाँ वे अजंता के वैभव की गर्वोक्ति करते हैं, वहीं वे बीसवीं शताब्दी की कला की संपूर्ण विजयों से लाभ लेते हैं।

पेरिस में हुई मुलाकात से पहले और बाद में इन में उनसे कई बार मिलना हुआ। कई बार लंबी-लंबी बैठकें हुईं। औपचारिक

पेड़

● डॉ. रमेशचन्द्र

भरी दोपहरी में लगता है कितना प्यारा पेड़
शीतल छाया बनकर देता सबको सहारा पेड़।

बच्चे खेलते छिपा छाई और खेलते आँख मिचौली
गिल्ली-डंडा खेलते रहते, करते जमकर हँसी ठिठौली
अपने ऊपर ले लेता है गर्मी सारा पेड़।

बड़े बूढ़े चौपाल बैठ कर करते हैं वार्तालाप
कोई हुक्का पीता तो कोई करता मंत्र का जाप
अपनी छाया में ले आता है भाईचारा पेड़।

कहीं बच्चों का कलरव होता कहीं बंसी की तान
जिसको छाया मिल जाती वही होता भाग्यवान
सर्दी, गर्मी, वर्षा से कभी न हारा पेड़।

प्राणों का संचार है, जब तक हैं ये पेड़
यह उपहार है कुदरत का इनको न कोई छेड़
जीवन और जगत् का है यह पालनहारा पेड़।

कितने ही बचपन बीते हैं इन पेड़ों की छाया में
यौवन और बुढ़ापा भी आ पहुँचा है काया में
सभी बदल जाते हैं लेकिन रहता ध्रुवतारा पेड़।

पेड़ों की छाया में सुनते हैं सब रामायण-गीता
इसकी ठंडी छाया में कितनों का पूरा जीवन बीता
सब पृष्ठों तो मंदिर, मस्जिद और हैं गुरुद्वारा पेड़।

पेड़ न होता जल न होता और न होता जीवन
बिना पेड़ के मानव जीवन में किसी बड़ जाती उलझन
फल देता पत्थर के बदले, किस्मत का मारा पेड़।

पर्यावरण की जान कहलाता फिर भी करता रहता पेड़
खिड़की, चौखट, दरवाजे में सिमटता रहता पेड़
झर-झर रोता अपने कटने पर असहाय बेचारा पेड़।

लघुकथा

अभागा

● डॉ. सुनील कुमार अग्रवाल

राम प्रसाद का पिता अपने जीवन के अंतिम काल में गाँव से शहर
राम प्रसाद के पास आ गया था क्योंकि वह बीमार था और गाँव में
विक्रिया सुविधा का अभाव था। उसने अपनी सारी सम्पत्ति अपने
जीवनकाल में ही राम प्रसाद को सौंप दी थी तथा स्वयं मेहनत-मजदूरी
करके पैतृक गाँव में ही रहकर गुजर-बसर करता था। वृद्धावस्था और
बीमारी के कारण वह मर गया। रों की आवाज सुनकर पड़ोसी आ
गए। राम प्रसाद अपने पिता की अंतिम यात्रा की तैयारी में लग गया।
राम प्रसाद की पत्नी चीख-चीखकर रोते-रोते बोली यह अभागा तो
कर्जदार ही मर गया। पड़ोसियों ने जब कर्ज के सम्बन्ध में जानना चाहा
तो वह बोली कि जब से यह हमारे पास शहर आया है, इसकी बीमारी
के इलाज में हमारा दो-ढाई हजार रुपया खर्च हो गया। कह रहा था
ठीक होने पर मेहनत-मजदूरी करके चुका दूँगा। अब क्या खाक कर्ज
चुकाएगा। अब तो इसकी अंत्येष्टि में हमारा और खर्च हो जाएगा।
कर्जदार ही मर गया अभागा। ■

और अनौपचारिक बातचीत हुई।
कभी उनके बचपन की, कभी उनके
जीवन की, कभी उनके संघर्ष की,
कभी उनके चित्र-कर्म की या उनकी
संपूर्ण कला यात्रा के विभिन्न
सोपानों की। हर बार यह कोशिश
हुई कि जाना जाए कि वे अब क्या
कर रहे हैं।

इस जार वे बहुत थोड़े समय के
लिए आए थे। मिलते ही उन्होंने
मुझे निकट खींच लिया और बोले,
“भई, मुझे तुमसे बात करनी है,
खासकर, तुमसे ही क्योंकि तुमसे
अपने सभी कालखंडों पर चर्चा हो
चुकी है। अब जो मेरे काम का
'फेज' आया उसकी बाबद भी तुम्हें
बताना जरूरी होगा।”

और उस शाम हम आमने-
सामने थे और बिसलरी की
चुस्कियाँ लेते हुए बात कर रहे थे।
“मैं आधा हिन्दी में, आधा
अंग्रेजी में बोलूँगा। दिक्रत तो न
होगी? उन्होंने पूछा था।

मेरे सिर हिलाते ही वे शुरू हो
गए थे:

“क्या मैं बहुत सामान्य बातों
से आरंभ कर सकता हूँ जो मेरे
अनुसार मेरी पेंटिंग के लिए बहुत
महत्वपूर्ण है? मैं पहले भारत में
फिर विदेश में बहुत ही कठिन
आकादमिक ट्रेनिंग से गुजरा हूँ
जिसका लक्ष्य उन तत्वों को पाना
था जिन पर चित्रों की सौंस निर्भर
है। मैं सौंस की बात कर रहा हूँ,
आत्मा की नहीं।”

मुझे याद आता है कि 1979 में
भी उन्होंने चित्रों की सौंस की बात
की थी। चित्रों के प्राण जिन पर
निर्भर हैं।

“मैं अपने, सिर्फ अपने बारे में
कह सकता हूँ। एक बच्चा जो
मध्यप्रदेश के बहुत ज्यादा खूबसूरत
जंगलों में पैदा हुआ, जिला
नरसिंहपुर, मंडला जहाँ सतपुड़ा-
विंध्याचल, आम, केला, रोशनियाँ
और अँधेरे, जंगल, जंगलों में
हाथी, हाथी मुझे खासतौर पर पसंद
था, ऊँट, घोड़े। पिता महकमा
जंगलात में थे। कोई हजार लोग
उन्के साथ काम करते थे। बचपन
बहुत महत्वपूर्ण होता है किसी के
लिए भी। मैंने प्रकृति का सर्वोत्कृष्ट
तभी से सँजोकर सुश्रित रख लिया
था- भविष्य के इस्तेमाल के लिए।
प्रकृति का लैंडस्केप, सूर्योदयिक
और रक्ष्यभरा लैंडस्केप (यहाँ यह
बताना भी जरूरी होगा कि रखा ने
शुरुआत लैंडस्केप ऑरिस्ट के रूप
में ही की थी) जो मेरे निकट एक
चाक्षुष यथार्थ था, उसे ही मुझे
अपने अपने काम में उतारना था पर

वैसा नहीं जैसा आँख देखती है, तो
कैसा? पर उसके लिए मुझे चित्र
की सही भाषा सीखनी थी, रंगों का
मिजाज समझना था और एक खास
लयात्मकता, जिस सबको, सीखने
में मुझे तीस साल लगे। रंगों के
इस्तेमाल की आज्ञादी भेजे पा ली।
ऑर्केस्ट्रेशन भी मिला पर फिर भी
कुछ और था जो अब भी नदारद
था, जो शायद मूलभूत बात थी
और इसके लिए मुझे भारतीय
सौंदर्यबोध के निकट आना जरूरी
था। उसी की तलाश में मैं 1975 से
लगभग हर वर्ष भारत आता रहा कि
प्रकृति को पढ़ सकूँ-पहाड़,
नदियाँ, पेड़, यहाँ के टेक्स्टाइल,
संगीत, कविताओं-गीतों को जान
सकूँ जिससे कि वे सब मेरी संवेदना

के साथ सामंजस्य स्थापित कर
सकें। लेकिन इस सबमें काफ़ी समय
लगा और जब 1982 में मैंने 'माँ'
बनाया तो मुझे लगा कि मैंने कुछ पा
लिया है। अशोक वाजपेयी की
कविता-पंक्ति है 'माँ! लौटकर जब
आऊँगा, क्या लाऊँगा?' जिसे
प्रेरित है यह चित्र। इस चित्र में मैंने
अपने जीवन के मुख्य अनुभवों,
चित्रों, प्रतीकों, दृश्यों और स्मृतियों
को चित्रित किया है। इसे मैंने अपने
प्यारे देश को समर्पित किया है,
अपनी माँ को यह मेरा उपहार है।”

जहाँ तक मुझे याद है कि
काला सूरज आपने 1953 में
पहली बार बनाया था। इसके
पीछे आपकी परिकल्पना
क्या है?

मैंने बताया है कि मेरा बचपन
अंधकार से गहराते जंगलों में बीता
है जहाँ डरावना और काला अँधेरा
सारे दृश्यों को अपने में समेट लेता
था और सुबह की पहली सुनहरी
किरण आने पर ही उस आतंक का
अंत होता था। भय से भौचक खड़े
हम उस किरण की प्रतीक्षा करते
रहते थे। उसी आतंक की अनुाँज
गहरे-काले सूरज में है जिसकी
चमचमाहट की ज्वाला में एक घना
जंगल प्रदीप्त हो उठता है।

मेरे तमाम प्रयास भारतीय
परम्परा के प्रतीकों-चित्रों को
समझाने की दिशा में हैं। जैसे लिंग,
योनि आदि के गहरे अर्थ हैं भारतीय
दर्शन में जो अश्लीलता, अभद्रता
से रहित है। मेरा प्रयास है कि मैं
उन्के निहित अर्थों का अध्ययन
करूँ। कुंडलिनी, पाँच चक्र,
त्रिमूर्ति, सरस्वती, गणेश, लक्ष्मी



की परिकल्पना और सार्थकता क्या
है। विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों
और क्रियाओं को समझूँ, उनका
अध्ययन करूँ, ऊपरी तौर पर नहीं,
बल्कि उनके गहरे अर्थ जानूँ जिन्हें मैं
बचपन से देखता रहा हूँ। इन सबकी
दोबारा खोज ही मेरी इन दिनों की
भारत-यात्राओं का उद्देश्य रहा है।
इधर चित्र कर्म व्यावसायिकता से
जुड़ता जा रहा है।

आप चित्र किस उद्देश्य से
बनाते हैं?

“मेरा मानना है कि कला-
अनुभव में किसी उच्च शक्ति की
भागीदारी आवश्यक है। आदमी तो
एक माध्यम होता है जिसके जरिए
दिव्य शक्तियाँ अपनी अभिव्यक्ति
करती हैं। इसीलिए मैं बार-बार
कहता हूँ कि कला कर्म में दिव्य
शक्तियों का सहयोग अनिवार्य है।

“एलोरा की गुफाओं में एक
महान शिल्पकार ने बड़ी ज्ञानशक्ति
से लिखा 'एतम् कृतं वो कृत
वृक्षयातु' महान शिल्पी अपनी
बनाई हुई कृतियों को देखता है और
कहता है, 'क्या मैंने यह बनाया है,
नहीं, यह तो अकस्मात् बन गया
है। किन्तु विनम्र बात है कि चित्र
या मूर्ति बन जाते हैं, बनाए नहीं
जाते। ■

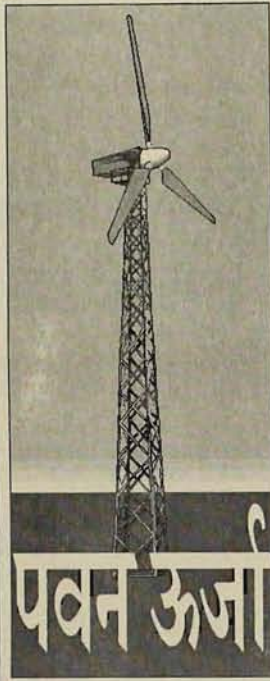
हा

ल ही में समाचार पत्रों में यह खबर थी कि भारत पवन ऊर्जा उत्पादन में विश्व में चौथे नंबर पर आ गया है। पवन ऊर्जा से 5200 मेगावॉट बिजली

का उत्पादन कर भारत ने पवन चक्कियों के देश डेनमार्क को अपरम्परागत ऊर्जा क्षेत्र में पछाड़ दिया है। इसके बाद भी यह समाचार माध्यमों में प्रथम पृष्ठ पर सुर्खियों में स्थान नहीं ले सका। आजादी के बाद पहली बार यह स्थिति बनी है कि पवन ऊर्जा (मार्च '05 3000 मेगावॉट) ने नाभिकीय ऊर्जा (2000 मेगावॉट) को पीछे छोड़ दिया है। ऊर्जा क्षेत्र की तुलनात्मक स्थिति को देखें तो देश में 50 सालों में नाभिकीय ऊर्जा को ही प्राथमिकता मिली है। संभवतः इसका कारण नाभिकीय ऊर्जा का उच्च प्रौद्योगिकी और विज्ञान की देन रहना रहा हो। मार्च '05 में पहली बार यह स्थिति बनी कि बड़े-बड़े वादे करने वाले नाभिकीय ऊर्जा क्षेत्र को अपरम्परागत पवन ऊर्जा क्षेत्र ने पीछे छोड़ा है।

इंसान की बुनियादी जरूरत की जब भी चर्चा चलती है तो रोटी, कपड़ा और मकान का दृश्य सामने आने लगता है। ताजा संदर्भों में देखा जाए तो इन तीन के अलावा ऊर्जा और ज्ञान को भी बुनियादी जरूरतों की सूची में शामिल किया जा सकता है। बिना बिजली के, बिना ज्ञान के इंसान आधुनिक युग के कदमताल करता इंसान नहीं माना जा सकता। इसके साथ ही ऊर्जा की उपलब्धता अपने आप में समस्या बन गई है। आबादी के विस्फोट और बढ़ती ऊर्जा जरूरत ने ऊर्जा दक्षता और आपूर्ति को इतना महत्व दे दिया कि हम परम्परा को ही भूल बैठे हैं। भारतवर्ष में पंचभूत (पवन, अग्नि, आकाश, जल और पृथ्वी) की उपासना सभ्यता के विकास के समय से हो रही है। भारतीय संस्कृति में पवन पुत्र हनुमान आराध्य हैं। हनुमानजी के सामने खड़े हो उनके समान ऊर्जा देने की प्रार्थना की जाती है। प्रातः सूर्य देवता को अर्घ्य चढ़ाने की परम्परा आज भी विद्यमान है। समुद्र देवता की लहरों में छिपी ऊर्जा से सभी अवगत

हैं। इसके बाद भी आधुनिकीकरण की दौड़ में हमारे परम्परागत ऊर्जा (पवन, सौर और जल विद्युत) स्रोतों



पवन ऊर्जा

दोहन संबंधी प्रतिबद्धता ने आज इस क्षेत्र को विश्व मानचित्र पर स्थान दिलाया है। जर्मनी (16,628 मेगावॉट), स्पेन (8263 मेगावॉट), अमेरिका (6740 मेगावॉट), भारत (5200 मेगावॉट) का क्रम है। एशिया की आधी से अधिक पवन ऊर्जा भारत में होती है। यँ देखें तो भारत के गैर परम्परागत ऊर्जा मंत्रालय ने देश में 45,000 मेगावॉट पवन ऊर्जा उत्पादन की संभावना जाहिर की है।

ऊर्जा के परम्परागत स्रोतों की प्रवृत्ति आमतौर पर केन्द्रीयकृत है, जबकि अपरम्परागत ऊर्जा स्रोत विकेन्द्रीकृत स्वभाव के हैं। विशाल भौगोलिक आकार वाले भारत देश की 45 प्रतिशत आबादी को अभी भी बिजली उपलब्ध नहीं हो पाती।

पवन ऊर्जा क्षेत्र को एक्सिलरेटेड डेप्रिसिएशन का लाभ 80 प्रतिशत की दर से उपलब्ध है। कर राहत योजना को कर बचत योजना से नत्थी करने के कारण न तो स्वतंत्र विद्युत उत्पादक आकर्षित हो रहे हैं और न ही प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और न ही स्वतंत्र संस्थागत निवेशकों को ही आकर्षित किया जा सका है। एसोसिएशन का मानना है कि कंपनियों को कर साख (टैक्स क्रेडिट) प्रमाण पत्र के जरिए अप्रत्यक्ष वित्तीय लाभ देने से 500 मेगावॉट क्षमता के पवन ऊर्जा उत्पादक उद्यानों (विंड फार्म्स) स्थापना में मदद मिलेगी। रिलायंस, ओएनजीसी, एचपीसीएल जैसे संस्थान 500 मेगावॉट के पवन ऊर्जा संयंत्र स्थापना की योजना

बौकंग (ऊर्जा संग्रहण) की अनुमति संबंधी समस्याएँ हैं। केप्टिव पावर (स्वयं के उपयोग के लिए ऊर्जा उत्पादन) नीति पवन ऊर्जा उत्पादन पर लागू करना भी एक समस्या के रूप में उभरी है। देश के अधिकांश राज्य विद्युत संकट का सामना कर रहे हैं। इसके बाद भी इस अपरम्परागत ऊर्जा स्रोत से बिजली उत्पादन की नीति को पुनरीक्षित करने में अपेक्षित रूप से प्रगति नहीं है। कुछ राज्यों ने सालाना खरीदी दर पुनरीक्षित की है, इनर्जी बौकंग की अनुमति दी है, किन्तु समग्र रूप से स्थिति में बदलाव की अपेक्षा की जानी चाहिए।

देश के राज्य जन कल्याण की दिशा में अनेक योजनाएँ संचालित करते हैं। कुछ राज्यों ने

पवन ऊर्जा : विश्व में प्रथम हो सकता है भारत

○ अपरम्परागत ऊर्जा के तहत पवन ऊर्जा उत्पादन में भारत ने पवन चक्कियों के देश डेनमार्क को पछाड़ दिया है। इसी के साथ भारत विश्व में चौथे नंबर पर है।

○ राज्य सरकारें यदि अनकूल नीतियाँ अपनाएँ तो भारत विश्व में अक्वल होने की संभावनाएँ लिए हैं।

अपरम्परागत हो चले तथा अपरम्परागत (जीवाश्म ईंधन जैसे पेट्रोल, डीजल, पेट्रोलियम गैस) परम्परागत हो गए। समुदाय और सरकार अभी ने अपरम्परागत/नवीनीकरण योग्य ऊर्जा स्रोतों की अनदेखी की। राजसहायता की मामला आया तो नवीनीकरण योग्य ऊर्जा स्रोतों की लंबे समय तक अनदेखी हुई। अब स्थिति यह है कि परम्परागत बने ईंधन स्रोतों के समाप्त होते भंडारों के कारण उपजी चिंता के चलते अपरम्परागत ऊर्जा स्रोतों की तरफ ध्यान जाने लगा है। आज भारत विश्व में एकमात्र ऐसा देश है जहाँ अपरम्परागत ऊर्जा मंत्रालय पृथक से कार्यरत है।

पवन ऊर्जा उत्पादन में हम अब विश्व में चौथे नंबर पर आने वाले हैं। वर्ष 1990 में भारत में पवन ऊर्जा उत्पादन नहीं के बराबर था। इस क्षेत्र में निजी निवेश की शुरुआत हुई और संभावनाओं के

दूरस्थ बसे 18,000 गाँवों को जगमग करना सरकार की प्रमुख चुनौतियों में से एक है। ऐसी स्थिति में पवन ऊर्जा को उत्पादन के लिए व्यवहार्य स्थानों पर संयंत्रों की स्थापना कर एक सीमा तक चुनौतियों का सामना किया जा सकता है। सरकार अत्यंत ही रियायती दरों पर पवन ऊर्जा उद्यमियों को जमीन उपलब्ध कराए तो लक्ष्य प्राप्ति में कुछ आसानी हो सकती है। राज्य विद्युत मंडल रियायती दरों पर ग्रिड शुल्क ले। समय पर बिजली खरीदी भुगतान की व्यवस्था हो। पवन ऊर्जा उत्पादकों के संघ इंडियन विंड इनर्जी एसोसिएशन का सुझाव (20 फरवरी '05) है कि पवन ऊर्जा क्षेत्र में अधिक निवेश आकर्षित करने के लिए 'एक्सिलरेटेड टैक्सेशन प्रणाली' के तहत आय कर कटौत लाभ की जगह दक्षता आधारित कर प्रणाली प्रभावशील की जाए। अभी

बना रहे हैं। कर साख प्रमाण पत्र की व्यवस्था के जरिए ऐसे संस्थान प्रोत्साहित होंगे तब कहीं जाकर पवन ऊर्जा क्षेत्र में सफलता के और ऊँचे परचम लहराए जा सकते हैं। देश के ऊर्जा क्षेत्र में अधिक पवनमय भविष्य का सृजन किया जा सकता है। धरातल स्तर पर देखें तो पवन ऊर्जा के प्रति राज्य सरकारों की नीतियाँ उत्साहवर्द्धक नहीं हैं। केन्द्रीय गैर परम्परागत ऊर्जा मंत्रालय ने राज्यों से आग्रह किया है कि वे अनुकूल नीतियों का निर्माण कर नवीनीकरण योग्य (रिनिवेबल) ऊर्जा उत्पादन में सहभागी बने। देश के कुछ राज्यों ने तो प्रभावी नीति ही नहीं बनाई। जिन राज्यों ने बनाई तो स्वभाव मौसम / जलवायु के मिजाज की तरह रखा। जब चाहे नीतियों में बदलाव किया। मध्यप्रदेश में वर्ष 1995 में नीति बनी और तीन बार इसमें बदलाव किया गया। राज्य सरकारें कभी एक कदम आगे चलीं तो दो कदम पीछे हटीं। स्थिति यह है कि राज्यों में पवन ऊर्जा उत्पादक कई समस्याओं का सामना कर रहे हैं। इनमें पवन ऊर्जा जनरेटरों को विद्युत मंडल की फीडिंग से स्थाई रूप से जोड़ने, हर वर्ष बिजली खरीदी की दर के पुनरीक्षण, एक वर्ष तक इनर्जी

● नीलमेघ चतुर्वेदी

मुफ्त एक बत्ती कनेक्शन तथा किसानों को 5 हॉर्स पावर की बिजली निःशुल्क दी। हालाँकि ऐसी योजनाएँ संचालित करना लोक कल्याणकारी सरकार की जिम्मेदारी बनती है, किन्तु इन सरकारों का यह भी दायित्व है कि 'भविष्य की ऊर्जा-हरित ऊर्जा' को प्रोत्साहित किया जाए। प्रकृति, विदेशी मुद्रा भंडार और जन स्वास्थ्य के प्रति मित्रवत ऊर्जा प्रक्रियाओं को हरसंभव समर्थन उपलब्ध कराया जाए। टिकाऊ विकास पद्धतियों को सुदृढ़ किया जाए। राज्य यदि ऐसा करते हैं तो केन्द्र द्वारा 2012 तक अतिरिक्त 1 लाख मेगावॉट बिजली उत्पादन में 10 प्रतिशत सहभागिता गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के जरिए प्राप्ति का लक्ष्य सुनिश्चित किया जा सकता है। दूरस्थ बसे उन 18,000 गाँवों में से उल्लेखनीय संख्या में गाँवों को रोशन किया जा सकता है, जहाँ आजादी के 59 सालों बाद में पवन ऊर्जा से 45,000 मेगावॉट बिजली उत्पादन की संभावना है। अभी 5200 मेगावॉट बिजली ही बनाई जा रही है। राज्य यदि अपनी भूमिका का सही स्वरूप में निर्वहन करें तो भारत पवन ऊर्जा के नक्शे पर विश्व में प्रथम स्थान पर चमक सकता है। ■

सिंचाई जलाशयों के कैचमेंट की संभावना

• के.जी. व्यास

सिंचाई जलाशयों के कैचमेंट से लगे क्षेत्रों में, किसानों को सामान्यतः सिंचाई का पानी उपलब्ध नहीं होता क्योंकि सिंचाई परियोजना बनाते समय उनकी (कैचमेंट में रहने वाले किसानों की) माँग को जलाशय की प्लानिंग में अनेक कारणों से सम्मिलित नहीं किया जाता। इसलिए जलाशय से लगे इलाके में बसे होने और सूखी खेती करने के बावजूद वे सिंचाई लाभों से वंचित रहते हैं। यह स्थिति उनके लिए असंतोष का कारण बनी रहती है।

गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों को भी प्राथमिकता दी जा सकती है। उपरोक्त सभी वर्गों के लिए गर्मी के मौसम में सिंचाई की व्यवस्था करने के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं:

चित्र में दर्शाए अनुसार जलाशय की परिधि के थोड़े अंदर के इलाके में, जहाँ गर्मी के मौसम में पानी रहता है, प्लेटफॉर्म बनाकर उस पर पंप स्थापित किए जा सकते हैं और इन पंपों की सहायता से पानी को कैचमेंट में स्थित खेतों तक पहुँचाया जा सकता है या डिस्ट्रीब्यूशन चेंबर बनाकर किसानों के खेतों में नहर

बनाकर बाँटा जा सकता है और कैचमेंट एरिया के किसानों को गर्मी के मौसम में सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराई जा सकती है। इस तकनीक से गर्मी के दिनों में डेड स्टोरेज के पानी का उपयोग होगा और कमांड में रहने वाले किसानों का भी नुकसान नहीं होगा।

जलाशय की परिधि के थोड़े अंदर जो प्लेटफॉर्म बनाए जाएँगे वे जलाशय के टॉप बंड लेवल (टीबीएल) से ऊपर स्थापित किए जाएँगे ताकि बरसात में पंप हाउस को नुकसान नहीं हो। दूसरा विकल्प यह है कि प्लेटफॉर्म जलाशय की परिधि के

बाहर बनाया जाए और डेड स्टोरेज से पानी प्राप्त करने के लिए पाइप की मदद से या नाली खोदकर डेड स्टोरेज के पानी को प्लेटफॉर्म की तली तक पहुँचाया जा सकता है और पंपों की मदद से ऊपर उठाकर सिंचाई के काम में लिया जा सकता है।

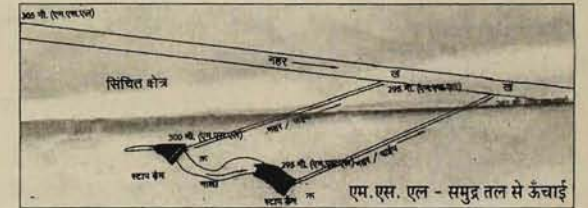
उल्लेखनीय है कि कैचमेंट में रहने वाले लोग वर्षा आधारित खेती पर निर्भर रहते हैं और सूखा पड़ने की हालत में उनकी कठिनाइयों का ग्राफ़ काफी ऊँचा हो जाता है। इसलिए उनके हित में कुछ किया जाना जरूरी है और चूँकि यह सुझाव उनकी कठिनाइयों को कुछ कम करता है अतः इस सुझाव को प्रयोग के तौर पर अपनाए जाने की जरूरत है। इस व्यवस्था से कैचमेंट में रहने वाले किसानों की पानी की समस्या को किसी हद तक कम किया जा सकता है। ■

सिंचाई

चाई परियोजनाओं के कमांड क्षेत्र में नहरों के अंतिम छोर पर सिंचाई के पानी का खेतों तक नहीं पहुँचना एक ऐसी समस्या है जो अमूनन सभी सिंचाई परियोजनाओं के कमांड क्षेत्र में पाई जाती है। आमतौर पर वे किसान जिनके खेत, नहरों के शुरूआती हिस्से में होते हैं, अज्ञानतावश, अधिक से अधिक पानी प्राप्त करने के लिए के चक्कर में नहरों को काटकर पानी प्राप्त करते हैं। नहरों को काटने के कारण, पानी का वितरण गड़बड़ा जाता है और नहरों के अंतिम छोर पर स्थित खेतों को आमतौर पर सही मात्रा में पानी नहीं मिल पाता है या कई बार वहाँ तक पानी नहीं पहुँच पाता है। इस समस्या से निपटने के लिए अनेक क्रदम उठाए गए हैं जिनमें नहरों को पक्का करना, बाराबंदी करना या किसानों

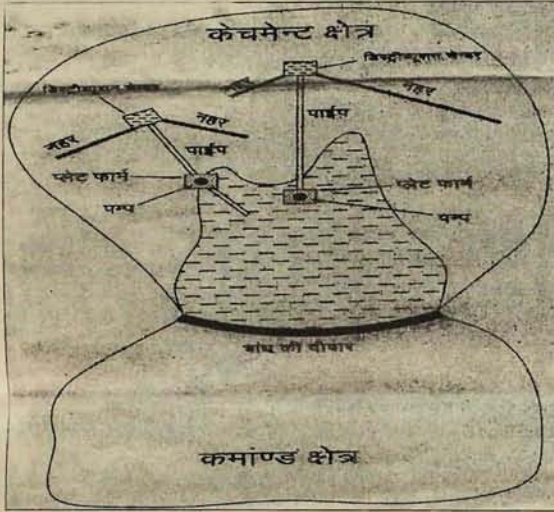
सिंचाई परियोजनाओं में नहरों के अंतिम छोर पर सिंचाई की समस्या और उसका निदान

को प्रशिक्षित करना शामिल है। इसके अतिरिक्त, पिछले कुछ सालों से कृषकों की सिंचाई में भागीदारी कानून लागू कर कोशिश की गई है कि नहरों के अंतिम छोर पर बसे किसानों को पानी उपलब्ध हो सके। इन सारे प्रयासों से स्थिति में आंशिक सुधार तो हुआ है पर अभी भी अनेक जलाशयों में नहरों के अंतिम छोर पर कम मात्रा में पानी पहुँच पा रहा है और उन इलाकों की फसलों को माकूल मात्रा में पानी नहीं मिल पा रहा है। अनुभव बताता है कि इस समस्या के लिए यदि किसान जिम्मेदार हैं तो अनेक बार नहरों की स्थिति भी किसी हद तक जिम्मेदार है। इस समस्या से निपटने के लिए एक व्यावहारिक सुझाव नीचे वर्णित किया जा रहा है:



अनुभव बताता है कि सिंचाई के मौसम में, अमूनन पूरे सिंचित इलाके में स्थित नदी-नालों में खूब पानी बहता है। यदि इन नदी-नालों पर स्टॉपडेम बनाकर पानी के स्तर को ऊपर उठा दिया जाए और उस पानी को नई केनाल (नहर) बनाकर या अंडरग्राउंड पाइप की मदद से, नहर के निचले भाग में उपयुक्त ऊँचाई के स्थान पर जोड़ दिया जाए तो नदी-नालों में बहने वाले पानी की कुछ मात्रा वापस नहर को मिल जाएगी और नहर के निचले हिस्से अर्थात् मिलन बिंदु के नीचे स्थित खेतों में पानी की पूर्ति काफ़ी हद तक बढ़ाई जा सकती है। इस व्यवस्था को चित्र में दर्शाया गया है। चित्र में बिंदु 'क' पर स्टॉपडेम बनाया गया है। स्टॉपडेम में पानी रोककर उसकी ऊँचाई बढ़ाई गई है तथा इस रोके हुए पानी को नई बनाई केनाल या पाइप की मदद से कम ऊँचाई पर स्थित बिंदु 'ख' पर पुनः उसी नहर से जोड़ा जा सकता है। इस व्यवस्था से नहरों के निचले भाग में पानी पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है अर्थात् नहरों के टेल एंड पर पानी पहुँचाया जा सकता है और पानी की कमी को किसी हद तक कम किया जा सकता है।

सैद्धांतिक रूप से यह सुझाव व्यावहारिक प्रतीत होता है। अतः इस सुझाव को प्रयोग के तौर पर अपनाए जाने की जरूरत है। उल्लेखनीय है कि ऊँचाई में अंतर होने के कारण स्टॉपडेम में एकत्रित पानी ग्रेवटी के सहारे बिंदु 'क' से चलकर 'ख' तक सरलता से पहुँचाया जा सकता है अर्थात् इस विधि में पानी को बिंदु 'क' से 'ख' तक ले जाने के लिए किसी भी प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकता नहीं है। इसे अपनाने से नई केनाल बनाने या पाइन डालने पर केवल एक बार का खर्च है। इस व्यवस्था से टेल एंड पर रहने वाले किसानों की पानी की समस्या को किसी हद तक कम किया जा सकता है। ■



मुख्य फसल लेने के बाद कई जलाशयों में पानी बचा रहता है। यह पानी नहर-तल के नीचे का पानी होता है। नहरों की मदद से पानी को बाहर निकालना संभव नहीं होता है। तकनीकी भाषा में यह डेड स्टोरेज का पानी है। गर्मी के मौसम में यह पानी काफ़ी मात्रा में भाप बनकर उड़ जाता है अर्थात् समाज के किसी भी काम में नहीं आता। भाप बनकर उड़ने वाले और डेड स्टोरेज में बचे पानी का अभी तक संभवतः कोई सदुपयोग नहीं हुआ है।

डेड स्टोरेज के पानी का सदुपयोग, गर्मी के मौसम में, कैचमेंट से लगे क्षेत्रों में रहने वाले किसानों के हित में किया जा सकता है। इस पानी की मदद से वे गर्मी के मौसम में अपनी ज़मीन के कुछ हिस्से पर फसल ले सकते हैं और अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। इस पानी के उपयोग में

लोभ का फल

एक किसान के बगीचे में अंगूर का पेड़ था। उसमें प्रत्येक वर्ष बड़े मीठे-मीठे अंगूर फलते थे। किसान बड़ा परिश्रमी, संतोषी और सत्यवादी था। उसने सोचा कि बगीचा तो मेरे श्रम की देन है, पर भूमि मेरे ज़मींदार की है; इन फलों में उसे भी कुछ-न-कुछ भाग मिलना चाहिए; नहीं तो मैं ईश्वर के सामने मुख दिखावे योग्य नहीं रहूँगा। ऐसा सोचकर उसने प्रतिवर्ष भूमिपति के घर कुछ मीठे-मीठे अंगूर भेजना आरंभ किया। ज़मींदार ने सोचा कि अंगूर का पेड़ मेरी ज़मीन में है इसलिए उस पर मेरा पूरा-पूरा अधिकार है। मैं उसे अपने बगीचे में लगा सकता हूँ। लोभ के अंधकार में उसे सत्कर्तव्य का ज्ञान नहीं रह गया। उसने अपने नौकरों को आदेश दिया कि पेड़ उखाड़कर मेरे बगीचे में लगा दो।

नौकरों ने मालिक की आज्ञा का पालन किया। बेचारा किसान असहाय था, वह सिवा पछताने के और कर ही क्या सकता था। पेड़ ज़मींदार के बगीचे में लगा दिया गया, पर फल देने की बात तो दूर रही, कुछ ही दिनों में वह सूखकर ढूँट हो गया और लोभ के कीड़े ने उसकी उपादेयता को जड़ से उखाड़ दिया।